**ओ३म्**

**‘सृष्टिकर्त्ता ईश्वर प्रदत्त वैदिक धर्म सभी मनुष्यों का परमधर्म’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

अग्नि आदि किसी पदार्थ के जलना, प्रकाश व गर्मी देना आदि गुणों को उसका धर्म कहा जाता है। मनुष्यों में जिन श्रेष्ठ गुणों को होना चाहिये उनका मनुष्यों में संस्कार व उन गुणों की उन्नति सहित तदनुसार आचरण को ही मनुष्यों का धर्म कह सकते हैं। किसी आचार्य व विद्वान द्वारा सत्यासत्य व स्वहित के नियमों का निर्धारण जिसमें दूसरों के हितों की किंचित भी अनदेखी व उपेक्षा हो वह धर्म कदापि नहीं हो सकता। धर्म वह होता है जिसकी मान्यतायें व सिद्धान्त सर्वमान्य व अकाट्य होने सहित सभी विषयों के ज्ञान में पूर्णता रखती हों और जिन्हें मनुष्यों द्वारा धारण करने से उनका अभ्युदय व निःश्रेयस सुनिश्चित होता हो। असत्य, अहिंसा व स्वहित के नियम मनुष्यों को आपस में बांटतें हैं और साथ हि अशान्ति व दुःख उत्पन्न करते हैं। यदि यह किसी समाज, संगठन व संस्था में हों तो विचार कर उनका निराकरण किया जाना चाहिये जिससे उस संस्था व अन्य संस्थाओं के लोग परस्पर भाई चारे का व्यवहार कर परस्पर निजी व सामाजिक उन्नति कर सकें। वैदिक मान्यताओं के अनुसार यह सृष्टि लगभग 1.96 अरब वर्षों पूर्व अस्तित्व में आई थी। लगभग 5,200 वर्ष पूर्व भारत में एक महायुद्ध हुआ जिसे वर्तमान में महाभारत के नाम से जाना जाता है। युद्ध में मनुष्यों की भारी क्षति होती है। बड़ी संख्या में लोग मारे जाते हैं। परिवारों में व देश में उनकी मृत्यु से सर्वत्र दुःख का वातावरण छा जाता है। लोगों की सामान्य दिनचर्या अस्तव्यस्त हो जाती है। राज्य की आर्थिक स्थिति पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ता है। राज्य से शिक्षा, चिकित्सा व अन्य विभागों का बजट कम करके उपलब्ध धनराशि को युद्ध में हुई क्षति की पूर्ति में लगाना पड़ता है। ऐसा ही कुछ कम या अधिक महाभारत के युद्ध के बाद हमारे देश में भी हुआ। उसके बाद देश की जो सामाजिक स्थिति निर्मित हुई उससे लगता है कि देश की शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह ध्वस्त हो गई थी। कहां तो महाभारत पूर्व हमारे देश में योगेश्वर श्री कृष्ण, महात्मा विदुर, युधिष्ठिर व अर्जुन जैसे विद्वान व वीर मनुष्य तथा द्रोपदी, कुन्ती व माद्री जैसी शिक्षित व वेदज्ञान सम्पन्न विदुषी महिलायें होती थी और कहा महाभारत के बाद यज्ञों में गाय, बकरी, भेड़ व अश्व आदि की हिंसा करते हुए हमारे यज्ञकर्त्ता विद्वान दृष्टिगोचर होते हैं। अज्ञान व अन्धविश्वास बढ़ने लगे और इसके साथ जन्मना जातिवाद, ऊंच-नीच, छुआछूत, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, फलित-ज्योतिष जैसे अन्धविश्वास व कुरीतियां समाज में घर कर गये जिनसे आज तक भी पीछा नहीं छूटा है। पतन यहां तक हुआ कि सभी स्त्रियों व शूद्रों से वेदाध्ययन व शिक्षा का अधिकार ही छीन लिया गया। यह सब समाज की घोरतम पतनावस्था थी। इस अवस्था से जो सामाजिक स्थिति उत्पन्न होनी थी वह अविवेकपूर्ण ही होती, विवेकपूर्ण तो तब होती जब देश में लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अपना अधिकांश समय विद्यार्जन, सत्योपदेश, अन्धविश्वास व अवैदिक मतों के खण्डन में लगाते। यह श्रेय किसी ने नहीं लिया। इसका श्रेय उन्नीसवीं सदी में आर्यसमाज के संस्थापक और वेदों के मर्मज्ञ विद्वान, सिद्ध योगी व परमदेशभक्त व वेदधर्मप्रेमी महर्षि दयानन्द सरस्वती को मिला।

सृष्टि का निर्माण मनुष्यों के द्वारा नहीं हो सकता। उनके लिए यह कार्य असम्भव है। हमारी यह सृष्टि वा भौतिक जगत जड़ प्रकृति के सूक्ष्म कणों वा परमाणुओं से मिलकर बना है। यह परमाणु भी नाना प्रकार के होते हैं। हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाईट्रोजन, कार्बन, आयरन, कैल्शियम आदि अनेक तत्व हैं जिनके सूक्ष्म परमाणु संरचना की दृष्टि से भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। यह जिस सत्व, रज व तम गुणों वाली प्रकृति से बने वा बनायें गये हैं, उसके लिए एक अतिसूक्ष्मतम सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान, सृष्टि निर्माण का पूर्व अनुभव रखनेवाली सत्ता की आवश्यकता होती है। बिना इसके सृष्टि का निर्माण नहीं हो सकता। सृष्टि का अस्तित्व यह घोषणा कर रहा है कि मुझे एक दिव्य सत्ता जो निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक व सर्वज्ञ होने सहित सच्चिदानन्द आदि गुणों से युक्त है, उसने इस समस्त सृष्टि वा ब्रह्माण्ड को बनाया है। बनाने वाले ईश्वर से भिन्न उपादान कारण के रूप में जिस जड़ पदार्थ का प्रयोग किया गया, उसे प्रकृति कहते हैं। उस ईश्वर ने पहले अति सूक्ष्म प्रकृति को भिन्न-भिन्न परमाणुओं में बदला वा बनाया, फिर उनसे अणुओं का निर्माण होकर यह समस्त स्थूल जगत बना है जिसमें सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, नक्षत्र आदि सम्मिलित हैं। यह ध्यातव्य है कि जड़ पदार्थों में स्वयं निर्मित होने की क्षमता नहीं होती। उसके लिए किसी बुद्धियुक्त चेतन, शक्तिसम्पन्न व प्रकृति से भी सूक्ष्म सत्ता की अपेक्षा होती है जिसे सृष्टिकर्ता कहते हैं। बिना कर्ता के कोई कार्य नहीं होता। आप आटे व उससे बनने वाली रोटी का सारा समान बनाकर अपने रसोईघर में रख दीजिए। जब तक कोई रोटी बनाने वाला मनुष्य रोटी नहीं बनायेगा, समस्त सामान उपलब्ध होने पर भी रोटी अपने आप कभी नहीं बनेगी। अतः ईश्वर द्वारा सृष्टि की रचना, उत्पत्ति व पालन होना युक्ति व तर्क से सिद्ध है। यदि कोई इन तथ्यों को नहीं मानता तो वह अज्ञानी, हठी व दुराग्रही ही कहा जा सकता है। यह सृष्टि की उत्पत्ति का वैज्ञानिक सिद्धान्त है।

ईश्वर ने सृष्टि बनाई और मनुष्यों सहित समस्त प्राणी जगत को भी उसी ने इस सृष्टि के आदि काल में उत्पन्न किया, तब से अब तक और आगे भी निरन्तर उत्पन्न करता रहेगा। अन्य कोई यह कार्य नहीं कर सकता था और सृष्टि रचना और प्राणियों की उत्पत्ति अपने आप वा स्वतः हो नहीं सकती थी। अतः ईश्वर के ऊपर न केवल सृष्टि की रक्षा व पालन का उत्तरदायित्व है अपितु मनुष्यों सहित सभी प्राणियों के पालन-पोषण सहित उन्हें भाषा व ज्ञान देना भी उसी का कर्तव्य निश्चित होता है। अब इस प्रश्न पर विचार करना उचित है कि ईश्वर प्रदत्त वह भाषा कौन थी और उसका ज्ञान क्या व किस रूप में था? इसका उत्तर हमसे पूर्व ही हमारे प्राचीन शास्त्रों व बाद में महर्षि दयानन्द ने अनेक प्रमाणों, तर्कों व युक्तियों से दिया है जिसे सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में देखा जा सकता है। प्रबल युक्तियों से पोषित यह उत्तर बताता है कि ईश्वर ने मनुष्यों को बोलने के लिए उत्कृष्ट संस्कृत जिसे वैदिक संस्कृत कह सकते हैं, का ज्ञान आदि ऋषियों व मनुष्यों को दिया था। ज्ञान पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि ईश्वर ने अपना वह ज्ञान चार वेद **‘ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद-अथर्ववेद’** के रूप में चार ऋषियों **अग्नि-वायु-आदित्य-अंगिरा** को उनकी आत्मा में प्रेरणा द्वारा प्रविष्ट किया था। ईश्वर निराकार, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी है अतः ऋषियों वा मनुष्यों की अन्तरात्मा में ज्ञान स्थापित करना व उसकी प्रेरणा करना उसके लिए सरल, सहज व स्वाभाविक है। ईश्वर के लिए यह कार्य यह सम्भव है असम्भव कदापि नहीं। चार वेदों का यह ज्ञान ईश्वर ने उनके अर्थों वा भावों सहित स्थापित किया था जिससे ऋषियों को वेदार्थ जानने में कोई कठिनता नहीं हुई। उन ऋषियों को ईश्वर की ओर से यह दायित्व भी दिया गया था कि वह वेदों के ज्ञान को अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न अन्य सभी युवा स्त्री-पुरुषों को उपदेश, अध्ययन व अध्यापन द्वारा करायें जिसे उन्होंने सफलतापूर्वक किया भी। वही परम्परा महाभारतकाल तक अबाध रूप से चली और उसके बाद लुप्त व विश्रृंखलित होने पर महर्षि दयानन्द (1825-1883) ने उसे पुनः प्रचलित किया और उनकी इस कृपा से आज चारों वेद पूर्ण सुरक्षित हैं व उनके हिन्दी व संस्कृति सहित अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में भाष्य भी उपलब्ध हैं जिससे साधारण हिन्दी पढ़ सकने वाला मनुष्य भी विद्वान हो सकता है। इसी से हमने भी लाभ उठाया, हम जो कुछ हैं, इसी का परिणाम हैं।

**चार वेद सभी सत्य विद्याओं के सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ हैं। शायद ही कोई ऐसा विषय हो जिसका उल्लेख व मनुष्य के कर्तव्य की शिक्षा वेद में न हो। इसी कारण महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन काल में घोषणा की थी कि वेद ईश्वर कृत हैं और सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं। इनका पढ़ना व पढ़ाना और सुनना व सुनाना संसार के सभी मनुष्यों का परम धर्म (परम कर्तव्य) है। यदि किसी मनुष्य ने वेद नहीं पढ़े और उनका प्रचार नहीं किया तो इसका अर्थ है कि हमने मनुष्य के परम धर्म का पालन नहीं किया।** वेद से इतर मत-मतान्तर व्यापक दृष्टि से देखने पर कुछ व अधिक मात्रा में धर्म हो सकते हैं परन्तु वेद परम-धर्म है। वेद विरुद्ध विचार, कार्य व आचरण अधर्म ही कहा जा सकता है। **जो व्यक्ति वेद नहीं पढ़ता और उसके अनुसार आचरण नहीं करता वह इस जगदीश्वर सृष्टिकर्ता के नियम को तोड़ने का दोषी होता है।** ईश्वर व वेद की ओर से मनुष्यकृत रचनाओं को पढ़ने की मनाही नहीं है, इनको भी पढ़ना चाहिये, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि मनुष्य के अल्पज्ञ होने से मनुष्यकृत ग्रन्थों में सत्य व असत्य दोनों का मिश्रण होता है। अतः वेदों को जानकर वेदसम्मत कर्तव्यों व मान्यताओं का ही आचरण व प्रचार करना चाहिये। वेद में ही ईश्वर व जीवात्मा आदि पदार्थों के सत्य स्वरूप का वर्णन है। इनके अध्ययन से ही ईश्वर की **स्तुति-प्रार्थना-उपासना, देवयज्ञ** व अन्य यज्ञों के विधिपूर्वक करने का ज्ञान होता है। वेदों की इसी महत्ता के कारण सृष्टि के आरम्भ से लेकर महाभारतकाल तक के एक अरब छियानवें करोड़ आठ लाख अड़तालीस हजार वर्षों तक भूमण्डल पर एक ही मत वैदिक मत वा धर्म का प्रचार प्रसार रहा। अन्य किसी महापुरूष ने कभी नये मत की स्थापना का विचार ही नहीं किया क्योंकि उनरकी न तो आवश्यकता थी और ऐसा करने पर भी वह वर्तमान की तरह प्रचलित नहीं हो सकते थे। वेदेतर सभी मत महाभारत काल के बाद अन्धकार व अज्ञान के समय में अस्तित्व में आयें हैं। क्यों आये? क्योंकि लोग वेदों के मार्ग को भूल बैठे थे। उन्हें मत-प्रवर्तकों द्वारा अपने ज्ञान व योग्यतानुसार व्यवस्थित करने का प्रयास किया जाता रहा। वेद की तुलना में सभी मत व उनकी पुस्तकें ज्ञान की दृष्टि से उच्च न होकर निम्नतर ही हैं। अतः सत्य के खोजी व पिपासुओं के लिए वेद ही अन्तिम लक्ष्य है। वेद सम्पूर्ण मानव धर्म है। वेदरिुद्ध मान्यतायें व सिद्धान्त धर्म नहीं अपितु अधर्म हैं जो सर्वत्र मत-मतान्तरों में समान रूप से पाये जाते हैं। वैदिक धर्म ईश्वर प्रदत्त होने से सबके लिए कर्तव्य एवं आचरणीय है। यदि इसका कोई पालन नहीं करेगा तो ईश्वर की व्यवस्था का पालन न करने का दोषी होगा और उसका परजन्म उसके इस जन्म में वेदाज्ञा का पालन न करने से दण्ड का कारण व आधार हो सकता है। हमने सत्य के स्वरूप के प्रकाशन के लिए कुछ विचार प्रस्तुत किये हैं। आशा है सत्यप्रेमी इससे लाभान्वित होंगे।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**